

वैयाकरणोऽथ भिषक्चूडामणिश्चक्रपाणिः

बनवारीलाल गौड़

कुलपति, राजस्थान आयुर्वेद विश्वविद्यालय, जोधपुर.

कुछ महापुरुषों का अवतरण केवल अपने-अपने प्रतिनिधि देवताओं का प्रतिनिधित्व करने के लिये ही होता है। कुछ अवतरण एक ही देवता की विभिन्न कलाओं या गुणों के एक, एकाधिक या सम्पूर्ण स्वरूप का अभिनय करने के लिये होता है, इनमें कुछ लम्बे समय तक जीवन की विभिन्न विधाओं के साथ जीते हैं और उन्हें भोगते हैं जबकि कुछ केवल एक ही उद्देश्य के लिये अवतरित होते हैं और फिर कार्य की परिणामाप्ति पर अदृश्य हो जाते हैं, उसी अनन्त में विलीन हो जाते हैं जिसके अनादि स्वरूप से अवतरित हुये थे - जैसे नृसिंह अवतार। इसके विपरीत राम और कृष्ण ने सम्पूर्ण मानवजीवन के आदर्श और व्यवहार को भोगा, साथ ही बौद्ध एवं महावीर आदि भी ऐसे ही उदाहरण हैं। प्रत्येक ने मानव-मात्र को यही सन्देश दिया, जो गीता में उद्धृत है -

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।

स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ (गीता ३/२१)

श्रेष्ठ पुरुष जो-जो आचरण करता है, अन्य पुरुष भी वैसा-वैसा ही आचरण करते हैं। वह जो कुछ प्रमाण कर देता है, समस्त मनुष्यसमुदाय उसी का अनुसरण करते हैं।

क्या यह विसंगति नहीं लगती कि आचार्य चक्रपाणि पर लेख लिखना है और लेख की प्रारम्भिक भूमिका में इस तरह का ऐतिहा प्रस्तुत किया जा रहा है इसका उत्तर निषेधपरक है, और वह यह कि नहीं, कदापि नहीं, विसंगति तो लेशमात्र भी नहीं। क्यों ? क्योंकि अग्रिवेशतन्त्र के प्रतिस्करता चरक तो स्वयं अवतार ही थे। शेषावतार थे या नहीं, इसमें मतभेद हो सकता है, पर सरस्वती के प्रतिनिधिपरक अवतार थे इसमें कोई मतभेद हो ही नहीं सकता।

सरस्वती को भारतीय संस्कृत में वाग्देवी माना जाता है और वैदुष्य की अभिव्यक्ति वाक्परक उपदेश से या सम्भाषण से अथवा इन उपदेशों के वाक्यपरक लेख के प्रणयन से हुई है और ऐसे प्रणेता साक्षात् रूप में माँ सरस्वती के पुत्र होते हैं, उसकी परम्परा के वाहक होते हैं और सही अर्थों में उसके मूर्तिमन्त जीवित प्रतिनिधि होते हैं।

जब इस जीवन की सुप्रभात वेला में मैंने किशोरवय में संस्कृत का अध्ययन प्रारम्भ किया तो क्रमागत पाठ्यपुस्तकों में 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' से साक्षात्कार होने लगा, तब एक ही श्लोक हर तरफ सुनाई पड़ता था, वह श्लोक आज भी भुलाये भूलता नहीं, छुड़ाये छूटता नहीं, भगाये भागता नहीं, तोड़े टूटता नहीं, विश्रुंखलित होता ही नहीं। इस श्लोक में कृतिकार कालिदास की प्रशंसा नहीं है, उसकी कृति की प्रशंसा है। कैसे? --

काव्येषु नाटकं रम्यं, तत्र रम्या शकुन्तला।

तत्रापि च चतुर्थोऽङ्कः, तत्र श्लोकचतुष्टयम् ॥

यह केवल कहने का भेदमात्र है। इसमें काव्य में नाटक को श्रेष्ठ बताया है, नाटकों में 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' को साहित्य शिखरशिखर

पर रख दिया तो बताईये उसके रचनाकार तलस्थ कैसे होंगे ? वे भी शिखरस्थ ही होंगे।

ठीक यही स्वरूप मेरे जीवन में आयुर्वेद अध्ययन के क्रम में लगभग आधी सदी (४८ वर्ष) बीत जाने पर सहसा मनसा चिन्त्य हुआ। आयुर्वेद अध्ययन-अध्यापनरूपी बोधिवृक्ष की छाया में वर्षों से समाश्रित होते हुये भी यह बोध सहसा अब हुआ और एक श्लोक का भावपरक उत्स मेरे हृदय से फूट पड़ा -

वैद्यके चरको रम्यः, तत्र व्याख्या बहुविधाः।

तत्रापि दीपिका रम्या, तत्र सप्तचतुष्कः ॥

तत्रैतेषु चतुष्केषु प्रथमो विदितो वरः।

प्रथमेऽपि प्रथमोऽध्यायः तत्र सूत्रचतुष्टयम् ॥ (प्रो. बनवारीलाल गौड़)

अर्थात् वैद्यक-ग्रन्थों में चरक रमणीय (सुन्दर, श्रेष्ठ) है, इसकी अनेक प्रकार की व्याख्यायें हैं। उन व्याख्याओं में भी आयुर्वेद-दीपिका रम्या (सुन्दर, श्रेष्ठ) है। इसमें भी सप्तचतुष्क (सूत्रस्थान के २८ अध्याय) उत्कृष्ट हैं। इन चतुष्कों में भी प्रथम चतुष्क श्रेष्ठ जाना गया है और प्रथम चतुष्क में भी प्रथम अध्याय श्रेष्ठ माना गया है। इस प्रथम अध्याय में भी प्रारम्भ के ४ सूत्र सर्वोत्कृष्ट हैं। (दीपिका व्याख्या को देखकर ऐसा मेरा मानना है)।

इसमें महाकवि कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तलम् की तरह चरक की चक्रपाणिकृत प्रारम्भिक चार सूत्रों की व्याख्या में सब कुछ घटित हो जाता है, इतना महान् विद्वान् कि यदि इन चार सूत्रों को पढ़ना प्रारम्भ करो तो चार वर्ष लग जाय और पूरी चरक भी इसी क्रम में उद्भूत हो जाय फिर भी इन चारों सूत्रों की व्याख्या का अध्ययन अधूरा रह जाय। चक्रपाणि ने सारा पण्डित्य इन्हीं चार पण्डितसूत्रों में पिण्डित कर दिया तभी तो इस युग में महर्षितुल्य अध्यापक प्रो. कल्याणप्रसादजी शर्मा, जयपुर और पं. हनुमत् प्रसादजी शास्त्री, जामनगर इन चार सूत्रों की व्याख्या के सन्दर्भों में पूरी चरक पढ़ा देते थे। ऐसा सुनते हैं।

ये उपर्युक्त श्लोक (वैद्यके चरको...) केवल कल की ही रचना है यह तो सत्य है, पर यह तो अङ्कुरण है बीजवपन तो वर्षों पहले हो चुका था। अकेले चरक पढ़ लेना ही पर्याप्ति की अभिनिवृत्ति है उस पर यदि चक्रपाणि को अक्षरशः पढ़ लिया जाय और पढ़ कर समझने का प्रयासमात्र ही कर लिया जाय तो आयुर्वेदीय जीवन तो सफल हुआ ही समझो। सोने पर सुहागा कह दें तो कम से कम अतिशयोक्ति तो नहीं होगी। मैं यह सब इसलिये लिख रहा हूँ कि मुझे चक्रपाणि के उद्घरणों को विश्लेषणपूर्वक उद्भूत करना है, उन पर कुछ लिखना है, बल्कि यों कहें कि सूर्य को दीपक दिखाने का असफल प्रयास करना है। चक्रपाणि के वैशिष्ट्य को जब लिखूँगा तब सबसे पहले उनकी आयुर्वेद-दीपिका व्याख्या की प्रथम पंक्ति पर ही लिखूँगा। केवल इस पंक्ति से यह आभास हो जाता है कि चक्रपाणि कितने महान् विद्वान् थे। इस एक तण्डुलाम्यवहरण से ही तृप्ति अवाप्त होती है। इससे जो बृंहण होता है वह चरक के 'विद्या बृंहणानाम्' के अमृत वाक्य को

चरितार्थ करता है। चक्रपाणि के विभिन्न गूढवाक्यों को उद्घृत करने से पहले उन्हीं के वाक्यों को सबसे पहले परोस कर आत्मतोष प्राप्त करना मेरा प्रथम पड़ाव है, वे कहते हैं कि ...

सभ्याः सदगुरुवाकसुधास्त्रुतिपरिस्फीतश्रुतीनस्मि वो,
नालं तोषयितुं पयोदपयसा नाम्भोनिधिस्तृप्यति।
व्याख्याभासरसप्रकाशनमिदं त्वस्मिन् यदि प्राप्यते,
क्वापि क्वापि कणो गुणस्य तदसौ कर्णं क्षणं धीयताम् ॥
(च.सू. १/१-२ पर चक्रपाणि)

सभ्याः! सदगुरुवाकसुधास्त्रुतिपरिस्फीतश्रुतीन् वः तोषयितुम् (अहम्) अलम् न अस्मि। अम्भोनिधिः, पयोदपयसा न तृप्यति। इदम् व्याख्याभासरसप्रकाशनम्, यदि अस्मिन् क्व अपि क्व अपि गुणस्य कणः प्राप्यते तत् असौ (कणः) कर्णं क्षणं धीयताम् ॥

हे सभ्यजन ! श्रेष्ठ गुरुओं की वाणीरूपी पीयूष-धारा से पर्याप्त समृद्ध श्रुति वाले आपको मैं पर्याप्त संतुष्ट करने में समर्थ नहीं हूँ। अम्भोद (मेघ) के जल से सागर तृप्त नहीं होता है। यह तो व्याख्या के आभास के रस का प्रकाशन-मात्र है। यदि इसमें कहीं भी गुण का यह (एक) कण प्राप्त होता है तो इसे क्षण भर कान में धारण कीजिये।

निष्कर्ष रूप में गर्व से यह कहा जा सकता है कि चक्रपाणि श्रेष्ठ आयुर्वेदज्ञ थे जिन्हें शास्त्र के गूढतम ज्ञान के साथ-साथ सिद्धान्तों को व्यवहार में प्रयोग करने की महारथ हासिल थी। द्रव्यों का रस-गुण-वीर्य-विपाकपरक ज्ञान होने के साथ-साथ उनकी कल्पनाओं का वैशिष्ट्य उन्हें परिज्ञात था। वे शास्त्रमर्मज्ञ थे, द्रव्यगुणविशेषज्ञ थे, सूदशास्त्र उनकी नस-नस में भरा था तभी तो वे भिषक्चूडामणि थे।

लेकिन जब चरक की भाषा और वर्णन शैली देखते हैं तो वह गंगा की तरह विशाल और पवित्रतम है, लेकिन शब्दों का गुम्फन देखते हैं तो घमघर की बाढ़ का दृश्य साकार हो उठता है। ऐसे शब्द-प्रयोग और वाक्य-विन्यास कि बड़े से बड़ा वैयाकरण भी दौंती तले अंगुली दबाये बिना रह न सके। जब दर्शन विषयों का विश्लेषण देखते हैं तो ब्रह्मपुत्र का गाम्भीर्य और विशालता सामने आ जाती है।

ऐसा बहुविधशास्त्रज्ञ यदि आयुर्वेद में अक्षरों में अक्षरा कीर्ति के साथ दिखाई दे तो वह किसी अवतार से कम नहीं, वह किसी देवता का अवतार न होकर चक्रपाणि का ही अवतार है यह कहना उपयुक्त है चक्रपाणि के लिये कोई दूसरी उपमा देना उपयुक्त है ही नहीं। चक्रपाणि चक्रपाणि ही थे, चक्रपाणि का ही अवतार थे। वाल्मीकि को राम और रावण के युद्ध के समान कोई उपमा दिखाई ही नहीं दी तो वे लिख बैठे - 'रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव' वैसे ही चक्रपाणि के लिये लिखा जा सकता है कि 'चक्रपाणेर्व्याख्या चक्रपाणेर्व्याख्या इव' (यहां अनन्वय अलंकार है जिसका तात्पर्य है कि इसका कोई अनन्वय ही नहीं अर्थात् यह अनूठा अलंकार है, बेजोड़ है) यह महान् व्यक्ति उद्भट वैयाकरण था गम्भीर दार्शनिक था चिकित्सा में सिरमौर था। अतः संक्षेप में यही कहना पर्याप्त है कि वैयाकरणोऽथ भिषक्चूडामणिश्चक्रपाणिः।

यहां इस प्रसंग में सर्वप्रथम आयुर्वेद-दीपिका का प्रथम श्लोक प्रस्तुत कर उसकी व्याख्या देकर उसे व्याकरण शास्त्र के सहयोग से मेरे शब्दों में प्रस्तुत कर रहा हूँ, यह एक दीर्घ श्रृंखला है जिसे समय-समय पर इसी शैली में प्रस्तुत करने का प्रयास करता रहूँगा -

गुणत्रयविभेदेन मूर्तित्रयमुपेयुषे।

त्रयीभुवे त्रिनेत्राय त्रिलोकीपतये नमः ॥

(च.सू. १/१-२ पर चक्रपाणि)

सत्त्व, रजः और तमः इन तीन गुणों के भेद (विभाग) से मूर्तित्रय (ब्रह्मा, विष्णु और महेश) रूप को प्राप्त, तीनों लोकों (भू-लोक, भुवर्लोक स्वर्लोक या आकाश, पाताल और पृथ्वी लोक) में होने वाले या उनके उत्पादक या वेदत्रयी के उद्भावक त्रिनेत्र वाले (त्र्यम्बक), त्रिलोकी के स्वामी (शंकर जी) को मेरा नमस्कार है।

आचार्य चक्रपाणि ने इस श्लोक में अपनी सम्पूर्ण व्याख्या के गाम्भीर्य को संक्षेप में अनुस्यूत कर अपनी विद्वत्ता को संकेतित कर दिया है। इसमें त्रिसंख्यापरक विशिष्ट विशेषणों के साथ 'उपेयुषे' जैसे कठिनतम व्याकरण साध्य शब्द को उल्लिखित किया है। यहां इसको संक्षेप में समझने की दृष्टि से अपने शब्दों में प्रस्तुत कर रहा हूँ -

(१) गुणत्रयविभेदेन - त्रयोऽवयवा अस्य इति त्रयम्। गुणानां त्रयं गुणत्रयं तस्य विशिष्टो विभेदः गुणत्रयविभेदः, तेन गुणत्रयविभेदेन। अर्थात् सत्त्व, रजः, तम इन तीनों गुणों का विशिष्ट स्वरूप जहां हैं ऐसे भगवान् शिव (जिन्होंने मूर्तित्रय के स्वरूप को प्राप्त कर लिया है, उनको नमस्कार है)।

(२) मूर्तित्रयम् - मूर्तीनां त्रयं, मूर्तित्रयं तत्, द्वितीयैकवचने मूर्तित्रयम्। यहां अकेले भगवान् त्रिनेत्र शंकर को तीनों मूर्तियों का एकत्रीभाव स्वीकार कर लिया है और इस स्वरूप के माध्यम से ही अकेले शंकर को नमस्कार कर तीनों देवताओं को चक्रपाणि ने नमस्कार कर दिया है।

(३) त्रयीभुवे - त्रयोऽवयवाः अस्याः इति त्रयी, त्रयां भवति इति त्रयीभूः तच्चतुर्थैकवचने 'त्रयीभुवे'। इस विशेषण से तीनों लोकों का उत्पादक भगवान् शिव को मान लिया है या तीनों लोकों में भगवान् शिव का अस्तित्व स्वीकार किया है। ऐसे भगवान् शंकर के लिए नमस्कार है।

(४) त्रिलोकीपतये - त्रयाणां लोकानां समाहारः त्रिलोकी। त्रिलोक्याः पतिः त्रिलोकीपतिः। तच्चतुर्थैकवचने 'त्रिलोकीपतये' इति रूपम्। इस विशेषण से साक्षात् रूप में त्रिनेत्र भगवान् शिव को त्रिलोकी का स्वामी मानकर उनके लिए नमस्कार अर्पित किया है।

(५) त्रिनेत्राय - त्रीणि नेत्राणि यस्य सः त्रिनेत्रः। तच्चतुर्थैकवचने 'त्रिनेत्राय'। यह भगवान् शिव का विशेषण है जिन्हें व्याख्याकार ने नमस्कार किया है।

इस सन्दर्भ में अत्यन्त ही विशिष्ट शब्द 'उपेयुषे' को आचार्य चक्रपाणि ने बड़ी ही चतुराई से प्रयुक्त किया है। इस तरह के शब्दों का बहुत कम प्रयोग साहित्य में हुआ है। यह शब्द व्याकरण की दृष्टि से अत्यन्त ही जटिल व्युत्पत्तिपरक शब्द है। अत्यन्त ही प्रयासपूर्वक और तज्ज्ञ विद्वानों से विमर्श करने के बाद यह शब्द-विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है। यही पूर्णतः शुद्ध है ये डिण्डिमघोष तो नहीं है पर मुझे लगता है कि शब्द के सही स्वरूप तक इसके माध्यम से पहुंचा जा सकता है। इसका स्वरूप निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया जा रहा है -

उपेयुषे - "उपेयिवाननाश्चाननूचानश्च" (३/२/१०९) इस सूत्र से 'उपेयिवान्' पद निपातन से सिद्ध होता है। उपेयुषे की पद निष्पत्ति प्रक्रिया इस प्रकार है। उप उपसर्गपूर्वक 'इण् गतौ' धातु से भूतमात्र अर्थ में "उपेयिवाननाश्चाननूचानश्च" इस सूत्र से विकल्प से लिट् लकार, लिट् के स्थान में नित्य क्रसु आदेश हुआ, उप+इ+लिट् (क्रसु-वस्), अनुबन्ध

लोप होकर 'उप+इ+वस्' यह स्थिति हुई, इसमें लिटि धातोरनभ्यासस्य (६/१/१८) इस सूत्र से इ धातु का द्वित्व हुआ, 'उप+इ+इ+वस्' दीर्घ इणः किति (७/४/६९) से दीर्घ, 'उप+ई+इ+वस्', 'वस्वेकाजादघसाम्' (७/२/६७) से 'इ तथा वस्' के मध्य में 'इट्' का आगम, अनुबन्धलोप, 'उप+ई+इ+इ+वस्' 'इ और इ' को प्राप्त दीर्घ को बाधकर 'इको यणचि' (६/१/७४) से पूर्व 'इ' के स्थान पर य् (यण्), 'उप+ई+य्+इ+वस्' अकार और ईकार को गुण वर्णसम्मेलन, 'उपेयिवस्' । यह प्रातिपदिक निष्पन्न होता है । इसके प्रथमा विभक्ति के एकवचन में 'उपेयिवान्' रूप निष्पन्न होता है । इस (उपेयिवस्) के चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में 'ङे' प्रत्यय, अनुबन्धलोप, 'उपेयिवस्+ए (ङे)', 'यचि भम्' से भसंज्ञा होने से 'वसोः सम्प्रसारणम्' (६/४/१३१) से व के स्थान पर सम्प्रसारण व् को उ होने से 'उपेयि उ अस् +ए', 'सम्प्रसारणाच्च' (६/१/१०८) से पूर्वरूप होने पर (अ का पूर्वरूप होने पर) 'उपेयि उस् ए' हुआ, 'वल्' प्रत्याहार में 'व' ध्वनि आती है, यहाँ 'व' ध्वनि आती है, यहाँ 'व्' ध्वनि का 'उ' सम्प्रसारण होने से वलादित्व का विघात हो गया अतः वलादिलक्षण 'इट्' की निवृत्ति हो गई, अर्थात्

'य' ध्वनि के बाद 'इ' ध्वनि नहीं रही, 'उपेय्+उस्+ए' हुआ, यहाँ वलादित्व का नाश होने से 'अकृतव्यूहाः पाणिनीयाः 'के' कृतमपि कार्य निवर्तयन्ति' के निर्देश में इट् (य् में इ) की निवृत्ति 'उपेय् उस्+ए', 'शासिवसिघसीनां च' (८/३/६०) सूत्र से षत्वादेश, वर्णसम्मेलन, 'उपेयुषे' रूप निष्पन्न होता है । द्वितीया बहुवचन में तथा पञ्चमी, षष्ठी के एकवचन में 'उपेयुषः' तथा स्त्रीलिङ्ग में 'उपेयुषी' रूप होते हैं ।

यह 'उपेयुषे' की निष्पत्ति इतनी जटिल है कि यहां हास्यपूर्वक यदि चक्रपाणि को उलाहना देते हुए यह कहा जाय कि - भले मानुष इतना जटिल शब्द व्याख्या के प्रारम्भ में प्रथम पंक्ति में ही देने की क्या आवश्यकता पड़ गई थी जिसे देखकर बड़े-बड़े विद्वानों के छक्के छूट जाते हैं ।

इस सन्दर्भ में यह उल्लिखित करना भी अनपेक्षित नहीं होगा कि आचार्य चक्रपाणिदत्त के प्रस्तुत मङ्गलाचरण श्लोक का समभावी मङ्गलाचरण श्लोक बाणभट्ट विरचित कादम्बरी में दृष्टव्य है -

रजोजुषे जन्मनि सत्ववृत्तये स्थितौ प्रजानां प्रलये तमःस्पृशे ।
अजाय सर्गस्थितिनाशहेतवे त्रयीमयाय त्रिगुणात्मने नमः ॥

Bhishak Chudamani Chakrapani

Banwarilal Gaur

Vice-Chancellor, Rajasthan Ayurved University, Jodhpur.

Chakrapani was the great Commentator of Ayurveda, who has critically analysed & revealed many secrets hidden in the verses of Charaka Samhita and Sushruta Samhita. He had excellent knowledge of Sanskrit language and grammar. The present article highlights some of the glimpses of initial four verses commented by Chakrapani on Charaka Samhita. This represents the ancient knowledge & wisdom of great Ayurvedic physicians as well as the skill to arrange a bucket of information into concise stanzas.

गुजरात आयुर्वेद युनिवर्सिटी